AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

जीवन के चार पुरुषार्थों का सामाजिक महत्व

ORIGINAL ARTICLE

Author

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह राजपूत
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी साहित्य)
शासकीय नवीन महाविघालय
कुई कुकदुर, विकासखण्ड पण्डरिया
जिला कबीरधाम, छत्तीसगढ़, भारत

शोध सार

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में चार पुरूषार्थों का वर्णन मिलता है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो गृहस्थ जीवन को दिशा प्रदान कर गृहस्थी को संतुलित जीवन जीने के लिए तैयार करता है साथ ही साथ उन्हें आध्यात्मिक प्राणी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि पुरूषार्थों का मानव जीवन में क्या स्थान है। चारों पुरूषार्थों से युक्त मानव अपने जीवन को आदर्शों और नैतिकता के साथ नवीन लक्ष्यों को असानी से पाप्त करता है और यह बात वर्तमान संदर्भ में भी सही सिद्ध होती है।

मुख्य शब्द

पुरूषार्थ, समाजिक महत्व, हिन्दू धर्म.

परिचय

प्राचीनकाल में भारतीय जीवन पद्धति में जहाँ एक ओर मोक्ष को बहुत अधिक महत्व दिया गया है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति को अनेक पारिवारिक तथा आर्थिक दायित्वों को पूरा करने का भी निर्देश दिया गया है। ये दोनों लक्ष्य एक– दूसरे के विरोधी हैं इसलिए इन दोनों की प्राप्ति एक साथ होनी कठिन है। ऐसा विचार करके प्राचीन मनीषियों ने एक ऐसी योजना का निर्माण किया जिसके द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। इस योजना के अन्तर्गत व्यक्ति के कर्तव्यों को चार भागों में बांटा गया और इस योजना को पुरुषार्थ के नाम से सम्बोधित किया गया। अतः पुरुषार्थ का तात्पर्य जीवन के चार आधारभूत कर्तव्यों से है जिन्हें क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहते हैं। ये चारों कर्तव्य चार पुरुषार्थ हैं जिन्हें पूरा करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

हिन्दू धर्म में विचारों की अपेक्षा जीवन के मार्ग –प्रदर्शन पर अधिक बल दिया है। यद्यपि विचारों की स्वाधीनता को महत्त्व दिया है किन्तु हिन्दू धर्म का आचार बहुत कठिन एवं वैज्ञानिक है। हिन्दू धर्म केवल धार्मिक विश्वासों पर नहीं वरन जीवन के अध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण पर बल देता है। कामना मानवीय कार्यों का उद्‌गम स्थल है किन्तु हिन्दू धर्म में पुरुषार्थ चतुष्टय में जीवन की सभी सम्भावनाओं की पूर्ण सिद्धि समाहित हो जाती है।

धर्म

भारतीय संस्कृति को धर्म– प्राण कहा जाता है अर्थात् संस्कृति का प्राण है– धर्म। भारतीय संस्कृति में धर्म की शास्त्रीय व्याख्या की गई है। धारणात् धर्मः। अथवा ''धारयते इति धर्मः'' जिसका अर्थ है– धारण करना। धारण किसका? हमारी जाति का, देश का, मानव जाति का, चराचर सृष्टि का। मनुष्य ही सृष्टि में सर्वोच्च प्राणी है अतः उसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। उसे सबकी व्यस्था करनी चाहिए।

धारणात् धर्मः, इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।
यत् स्याद् धारणासंयुक्तं सः धर्म इत्युदाहृतः।।

अर्थात् जो जीवन में नियम को धारण करते हैं, अर्थात् व्यक्ति और समाज के जीवन में जो संतुलन स्थापित करने में सक्षम है उन्हें धर्म कहते हैं। धर्म का उद्देश्य और कसौटी प्रजा के जीवन की रक्षा करना है।

प्रत्येक मनुष्य और समूह की आत्मा, मन, जीवन और शरीर की प्रत्येक क्रिया का अपना एक धर्म होता है। यघपि मनुष्य को अपनी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने का न्यायोचित अधिकार है, क्योंकि जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए यह अत्यावश्यक है तो भी इन्च्छाओं की आज्ञाओं का आँख मूँदकर पालन करना भी मनुष्यत्व नहीं है। यदि मनुष्य 'धर्म' या सदाचार के नियम के अनुकूल न चले, तो वह अपनी इच्छाओं का सर्वोत्तम सुख नहीं प्राप्त कर सकता। डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है– जिन सिद्वान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते है तथा जिसके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है वही धर्म है। वस्तुतः एक पुरूषार्थ के रूप में धर्म का तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों से हैं जो लोक हितकारी है तथा जिनके द्वारा व्यक्ति की इस जीवन तथा पारलौकिक जीवन में 'अभ्युदय' की प्राप्ति होती है। महाभारत में श्री कृष्ण ने कहा है कि धर्म वह जो प्राणी मात्र की रक्षा करता है तथा उन सभी को धारण करता है। इस प्रकार धर्म का तात्पर्य सामान्य धर्म और स्वधर्म दोनों का निर्वाह करता है।

धर्म का पालन मानव– जीवन का न तो आदि कर्तव्य है न अन्तिम कर्तव्य क्योकि धार्मिक नियम से भी बढ़कर है आध्यात्मिक स्वतन्त्रता। हिन्दुओं का आचार धर्म आकांक्षाओं के क्षेत्र को नित्य सत्ता के साथ जोड़ता है। वह पृथ्वी और स्वर्ग इन दोनों के परस्पर सम्बद्ध करने वाला है इसलिए कहा है जो धर्म का हनन करता है, धर्म उसका हनन कर देता है तथा जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है, क्योकि धर्म से व्यक्ति के साथ ही समाज की उत्पति होती है। महाभारत, याज्ञवल्क्यस्मृति, और मनुस्मृति इत्यादि स्मृतियों और धर्म शास्त्रों में सभी पुरुषार्थों में धर्म को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। गीता में भी धर्म के महत्व को स्वीकार किया गया है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।

अर्थात् गुणरहित होने पर भी अपना धर्म पालन करना अच्छा है, चाहे दूसरे का धर्म कितना अच्छा भी क्यों न हो, यदि मनुष्य अपने धर्म का पालन करता है तो इससे पाप नहीं लगता। महर्षि कणाद्। ने तो धर्म के अन्तर्गत लौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि मानी है– यतोअभ्यदयनिंः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

धर्म का महत्व

धर्म सामाजिक दृष्टिकोंण से व्यक्ति और समाज दोनों के ही सार्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुरूषार्थ के रूप में धर्म मनुष्य के नैतिक और सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति हेतु आवश्यक है। व्यक्ति अथवा समाज के विभिन्न सदस्य जब धर्म के निर्देशानुसार अपने कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक करते है तो समाज में सुव्यवस्था, शांति और समृद्धि होती है। पारलौकिक दृष्टिकोंण से धर्म ही साथी है जो मरने पर पीछे– पीछे चलता है।

अर्थ

अर्थ को हिन्दू धर्म में मानव जीवन का दूसरा पुरुषार्थ माना गया है। इस बात से इंकार नहीं किया सकता है कि अर्थ के बिना वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति नही की जा सकती और इन दायित्वों को पूरा किये बिना मनुष्य धर्म का निर्वाह नहीं कर सकता इसलिए धर्म पुरुषार्थ के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्थान 'अर्थ' पुरुषार्थ को दिया गया है। वस्तुतः अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थ को प्राप्त करने का साधन है।

वैदिक साहित्य में अर्थ शब्द का प्रयोग विभिन्न सन्दर्भों में किया गया है। श्री प्रभु ने कहा है कि 'अर्थ का तात्पर्य उन सभी उपकरणों अथवा भौतिक साधनों से है जो सांसारिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

ऋग्वेद के अनुसार, पुरुषार्थ के रूप में अर्थ का तात्पर्य उन सभी भौतिक वस्तुओं से है, जिनकी गृहस्थी चलाने,

परिवार बसाने तथा धार्मिक कार्यों को पूरा करने के किए आवश्यकता पड़ती है। जिन लोगों का जीवन बोझिल और बुभुक्षित होते हैं, वे धार्मिक नहीं हो सकते यदि होंगे भी तो आदिम रूप में।

आर्थिक असुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता ये दोनों चीजे साथ– साथ नहीं रह सकती। इतना होते हुए भी प्राचीन मनीषियों ने अनुचित ढंग से धन प्राप्त करने को मना किया है क्योंकि मनुष्य का उद्देश्य धन के द्वारा आंतरिक सन्तोष और पारलौकिक सुख प्राप्त करना होता है। ऐसा धन अथवा पदार्थ प्राप्त करना अधर्म है जिससे सुख और संतोष में वृद्धि न हो सके। कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति में अर्थ उपार्जन करने के लिए भी ईमानदारी और आचरण की शुद्धता पर ध्यान रखना अत्याधिक आवश्यक है क्योंकि अर्थ जीवन में सुखोपभोग या आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है किन्तु साध्य नहीं, अर्थ अर्जन करना जीवन का चरम लक्ष्य नहीं। अतः अर्थ के उपार्जन की दृष्टि धर्ममूलक हो, यह आवश्यक है।

अर्थ का महत्व

सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अर्थ के महत्व को स्वीकार किया गया है। महाभारत में व्यासजी ने अर्जुन के मुख से कहलवाया है कि संसार में जो कुछ भी धर्म समझा जाता है वह पूरी तरह धन पर आधारित है– सभी धार्मिक कार्य, क्षणिंक सुख यहाँ तक की स्वर्ग भी धन से मिल सकता है। कौटिल्य ने भी अपने ''अर्थशस्त्र'' में धर्म, अर्थ और काम में अर्थ को सबसे ऊँचा स्थान प्रदान किया है क्योंकि अर्थ, धर्म और काम का साधन है। धन के बिना मनुष्य न अपनी अभिलाषायें पूरी कर सकता है और न ही दान या यज्ञादि ही कर सकता है, अर्थात् धर्म का पालन करना भी अर्थ पर ही आश्रित है।

अतः शास्त्रों में धन को अत्याधिक महत्व देते हुए इसे अधिक से अधिक प्राप्त करने का आदेश दिया गया है लेकिन साथ ही यह भी निर्देश दिया गया है कि यह न्यायपूर्ण ढंग से बिना किसी को कष्ट दिये हुये कमाया जाये अर्थात् धन का उपार्जन धर्मानुसार होना चाहिए तथा अपनी आवश्यकता मात्र के लिए रखकर शेष धन संचयन करके जनसेवा और जन कल्याण पर खर्च कर देना चाहिये। इस प्रकार धन या अर्थ का सामाजिक महत्व है।

काम

काम की परिभाषा हैः– 'काम्यते जनैरिति कामः सुखः' मनुष्य द्वारा जिसकी कामना की जाय, वह काम है तथा यह काम सुख ही है। 'काम' का अर्थ संकुचित और विस्तृत दोनों अर्थों में किया जाता है। संकुचित अर्थों में काम का तात्पर्य केवल यौनिक प्रवृत्ति की संतुष्टि अथवा यौनिक इन्च्छा से है लेकिन व्यापक अर्थो में काम का तात्पर्य उन सभी इच्छाओं से है जो इन्द्रियों को संतुष्ट करने से सम्बन्धित है और जो मनुष्य को भौतिक सुख की ओर प्रेरित करती है। 'काम' (इच्छायें) भी तीन प्रकार का होता है– सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक काम को धर्म सम्मत काम कहा जा जाता है। संकुचित अर्थ में 'काम' इन्द्रिय सुख एवं यौन तृप्ति है। इस दृष्टि से हिन्दू शास्त्रकारों ने मनुष्य के लिए विवाह– बन्धन आदि व्यवस्था किया है, उन्होंने यौन इच्छा की उपेक्षा नहीं की है।

काम को व्यापक अर्थों में लेने वाले विचारकों का कहना है कि केवल शरीर संसर्ग ही यौन सुख नहीं है अपितु सौन्दर्यता और गोपनीयता भी विषयानन्द का भाग है। इसलिए वात्स्यायन ने अपने काम सूत्र में केवल वासनामय काम का ही वर्णन नहीं किया है वरन् उसमें उन्होंने 64 काम– कलाओं का वर्णन किया है। मनुष्य की सृजनात्मक प्रवृत्ति ही उसे पशु से अलग करती है और कला इस प्रवृत्ति की साकार अभिव्यक्ति है।

काम महत्व

काम चाहे यौन सुख के रूप के लिया जाये या मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है। काम व्यकि और समाज दोनो की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में काम का भी महत्व है। गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैंः

'धर्माऽविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'

अर्थात् जिस काम का धर्म से विरोध नहीं है वह मर्यादित काम मेरा ही स्वरूप है। इस प्रकार काम व्यक्तिगत,

सामाजिक, धार्मिक नियमों के द्वारा काम पर अंकुश रखकर इसे एक उपयोगी पुरुषार्थ का रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

मोक्ष

मोक्ष जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष आध्यात्मिक सिद्धि है। मोक्ष आत्ममुक्ति है, हमारी आत्मा का नित्य ब्रहम में लीन होना मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति के विभिन्न कार्यो मे ये तीन प्रधान हैः

- **कर्म मार्गः** इसके अन्तर्गत बताया गया है कि मोक्ष की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक व्यकि अपने निर्धारित कर्मो को नहीं कर लेता। वैराग्य लेकर मोक्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता, ऐसा कर्मयोग का मत है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया है कि बिना फल की इच्छा किये व्यक्ति को अपना कर्म करना चाहिए और ऐसे व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होंगे।
- **ज्ञान मार्गः** जब ज्ञान के द्वारा अलौकिक शक्तियों का साक्षात्कार हो जाता है तो वह व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी होता है, ऐसा ज्ञानमार्गियों का विचार है। ज्ञान की प्राप्ति कठोर तपस्या तथा गहन साधना पर अधारित है। दुःख का कारण है अज्ञान और इससे मोक्ष प्राप्त करना ही संसार के आवागमन चक्र से मुक्त होना है।
- **भक्ति मार्गः** अलौकिक शक्ति की प्राप्ति आराधना के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। भक्त को आराधना के कारण ईश्वर प्रसन्न होकर उसके मनोवांछित लक्ष्यों को पूरा करने का वरदान देता है। गीता मे कृष्ण ने कहा है कि सच्चा भक्त उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। आराधना किसी भी रूप में की जा सकती है जैसे– सखा, माता– पिता, तथा प्रेयसी।

मोक्ष का महत्व

मोक्ष अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है। अर्थ, धर्म, काम तीनो पुरुषार्थ में अपने में कोई महत्व नहीं रखते हैं। ये तीनों पुरुषार्थ तो मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन सवरूप हैं। वस्तुतः मोक्ष अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त, होकर चिरन्तन आनंद की प्राप्ति करना ही जीव का परम साध्य होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत मानव जीवन की सर्वांगीण अभिवृद्धि की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है। यह अत्यंत उत्तम एवं भारतीय आदर्शों का विज्ञापक सिद्धान्त है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय वेद, साहित्य एवम् स्मृतियों में पुरूषार्थ का वर्णन मिलता है और जीवन के चारों पुरूषार्थ हमें अपने जीवन मे अनुशासन तथा गृहस्थ जीवन में सभी सुखों तथा आनंद में वृद्धि करते है साथ ही साथ व्यक्ति के सामाजिक जीवन को संतुलित करते हुए आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते है। धर्म व्यक्ति को नैतिकता की शिक्षा देता है, अर्थ से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति संभव है अर्थ के अभाव में सब रिश्ते नाते बेकार है। काम इच्छाओं की पूर्ति में सहायक है। मोक्ष इस नश्वर संसार में जन्म मरण के बंधन से मुक्ति दिलाने का साधन है। चारों पुरूषार्थों का संयोग व्यक्ति के जीवन में संतुलन और नीति सम्मत जीवन जीने की राह प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ सूची

1. खंडेलवाल, जय किशन प्रसाद (1970) *प्राचीन भारतीय संस्कृति कला और साहित्य,* विनोद पुस्तक मंदिर, प्रकाशन, आगरा, पृ. 114, 115।
2. सर्वपल्लि राधाकृष्णन् (1970) *प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार,* राजपाल एण्ड सन्ज, प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 388।
3. देवांगन, बी. के.; यादव, धर्मेन्द्र सिंह (2025) *समाजशास्त्र भारत में परिवर्तनशील सामाजिक संस्थाएँ,* माइलस्टोन पब्लिकेशन, रायपुर, छत्तीसगढ, पृ. 43– 44।

––==00==––